हमारी अभावग्रस्त न्याय-व्यवस्था

प्रजातंत्र में अक्सर सरकारें एक सशक्त और स्वतंत्र न्यायतंत्र को पसंद नहीं करती हैं। सिद्धांतों की परवाह किए बगैर सभी नेता एक ऐसी न्याय-व्यवस्था चाहते हैं, जो चुनाव के समय जनता से किए उनके वायदों को पूरा करने में रोड़ा न बने। यही कारण है कि समय-समय पर न्याय तंत्र को धमकाने का प्रयास भी किया जाता है।

विदेशों के दृष्टांत देखें तो वे भी इस चलन से अलग नहीं हैं। सन् 1930 में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने उच्चतम न्यायालय को उन न्यायाधीशों तक सीमित करने की धमकी दे दी थी, जो उनकी विचारधारा के अनुरूप काम करने को तैयार थे। इसके बाद उच्चतम न्यायालय ने सरकार के सभी कल्याणकारी कानूनों को सम्मति देनी शुरू कर दी, जिन्हें वह पहले अधिकारातीत कहकर नामंजूर कर दिया करता था।

भारत में उच्चतम न्यायालय पर अंकुश लगाने के लिए भले ही इतने उग्र साधन न अपनाए गए हों, तथापि कार्यपालिका उस पर नियंत्रण का पूरा प्रयत्न करती है। इस प्रकार के नियंत्रण के लिए न्यायपालिका के बजट को बहुत ही सीमित रखा जाता है। सन् 2017-18 के बजट में न्यायपालिका को 1,744 करोड़ रुपये आवंटित किए गए, जो कुल बजट का मात्र 0.4 प्रतिशत था। एक तरह से देखें, तो गैर निष्पादित सम्पत्ति की दोषी शीर्ष 12 कंपनियों की ही राशि न्यायपालिका को आवंटित की गई राशि से दस-बारह गुना अधिक है। अकेले मोनेट इस्पात कंपनी के पास ही 10,333 करोड़ का ऋण बकाया है। सरकार के इस रवैये का न्याय-व्यवस्था पर बहुत विपरीत असर पड़ता है।

- कर्मचारियों की कमी और बुनियादी ढांचे के खस्ताहाल होने के कारण न्यायपालिका पर मामलों का पहाड़ लदा हुआ है।
- न्यायपालिका से सलाह-मशविरा किए बिना सरकार कानून पर कानून बनाए जाती है। इसके समानांतर न्यायिक अधिकारियों और न्यायालयों की संख्या नहीं बढ़ाई जाती। 1988 में चेक की अस्वीकृति को आपराधिक कृत्य की श्रेणी में डाल दिया गया। तब से लेकर अब तक इस मामले के 38 लाख केस विचाराधीन पड़े हैं।
- पूरे भारत के न्यायालयों में लगभग 3.4 करोड़ मामले लंबित पड़े हुए हैं।

अप्रैल 2017 तक न्यायाधीशों के 430 एवं अतिरिक्त न्यायाधीशों के 5000 पद विभिन्न न्यायालयों में रिक्त् पड़े हुए थे। इस कार्य के लिए सरकार के पास धन की कमी होती है। अतः न्याय प्रक्रिया वैसी ही लचर स्थिति में चलती चली जा रही है। भारत की सवा अरब से अधिक की जनसंख्या के लिए उच्चतम न्यायालय में मात्र 31 एवं उच्च न्यायालयों में 1,079 न्यायाधीश हैं।

अगर सरकार न्यायालयों के रिक्त हुए स्थानों को भरने में अक्षम है, तो उसे न्यायालयों में मुकदमे दायर करने की संख्या को भी कम करना चाहिए। भारत सरकार ही सबसे अधिक मुकदमे दायर करती है। सरकार को चाहिए कि अपने विवादों को संबंद्ध विभागों एवं अधिकारियों को जिम्मेदार बनाकर निपटाए।

न्यायालयों की एक गरिमा होनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था हो कि उनमें प्रवेश करने वाले लोगों का सिर न्याय के सम्मान में अपने आप झुक जाए। परन्तु आज हमारे निचले न्यायालय तो स्थानीय बस स्टैण्ड से भी बुरी अवस्था में हैं। किसी भी स्तर के न्यायाधीश को मिलने वाला वेतन बहुत कम है। सरकार को इस दिशा में तत्काल कदम उठाने की आवश्यकता है।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित सिद्धार्थ दवे के लेख पर आधारित।